PAGE NO.:
DATE: / /200

(iii) प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य :→

प्रसाद युग के बाद हिन्दी नाटकों का नवयुग आरंभ होता है जिसे प्रसादोत्तर काल कहा जाता है। इस युग में उन सभी प्रयोगों का विकसित रूप हम देखते हैं जो प्रसाद ने किये थे। इस युग में उनकी प्रेरणा का प्रभाव अनेक नाटककारों पर स्पष्ट है साथ ही उस प्रभाव से मुक्ति पाने का स्वस्थ प्रयास भी हुआ। ऐतिहासिक नाटकों की धारा बराबर चलती रही। राष्ट्रीय चेतना इस युग के नाटकों में और भी सबल होकर आयी। नाटककारों का ध्यान प्राचीन काल से हटकर वर्तमान पर अधिक केन्द्रित हुआ। वर्तमान जीवन की दैनिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याओं को विचार प्रधान ढंग से सुलझाने पर नाटककार प्रवृत्त हुए। हिन्दू - मुस्लिम एकता, देशभक्ति तथा बलिदान की भावना इन नाटकों में विशेष रूप से देखने को मिलती है। इस युग के प्रमुख प्रगतिशील नाटकों पर इब्सन, बर्नार्ड शॉ तथा गॉल्सवर्दी का प्रभाव भी स्पष्ट लक्षित होता है। नाटक काल्पनिक जीवन से हटकर यथार्थ की भूमि पर उतर आया। राजा - महाराजाओं को धता बता कर - मजदूर, किसान, क्लर्क, अध्यापक, व्यापारी, नेता, वकील आदि को नायक का स्थान मिला। पात्र, चरित्र - चित्रण,

Teacher's Signature

भाषा, वेशभूषा सभी में यथार्थ चित्रण की अभिरुचि इस युग की विशेष प्रवृत्ति है।

यथार्थवादी प्रगतिशील समस्या प्रधान नाटक लिखने का सर्वप्रथम श्रेय लक्ष्मीनारायण मिश्र को है। 'राजयोग', 'राक्षस का मंदिर', 'संन्यासी', 'मुक्ति का रहस्य' तथा 'सिन्दूर की होली' लिखकर इन्होंने हिन्दी नाटकों की नई धारा आरंभ की। उन्मुक्त प्रेम की वकालत तथा नारी-समस्या को सुलझाने की आकुलता भी इनके नाटकों में यत्र-तत्र मिलती है। 'अशोक', 'वत्सराज', 'दशाश्वमेध' और 'वितस्ता की लहरें' इनकी अन्य प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। सभी नाटक तीन अंक तथा तीन ही दृश्य के हैं जो मंचीय दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हैं।

राष्ट्रीयता, प्रेम और सामाजिकता को विषय बनाकर हरिकृष्ण प्रेमी ने ऐतिहासिक नाटकों की रचना की परन्तु इनके पात्रों के चरित्र पूर्ण ऐतिहासिक नहीं हैं। इनमें प्रभाव और उद्देश्य की दृष्टि से कल्पना का पुट है। स्वगत कथनों के स्वाभाविक प्रयोग तथा ओजपूर्ण, भावमयी भाषा के कारण इनके नाटक अभिनय की दृष्टि से बहुत सफल रहे। इनमें 'रक्षाबंधन', 'शिवा साधना', 'प्रतिशोध', 'आहुति', 'स्वप्न भंग', 'विषपान', 'कीर्तिस्तंभ'

Teacher's Signature

मुख्य है।

उपेन्द्र नाथ अश्क भी ऐसे नाटककार हैं जिन्होंने हिन्दी नाटक को रोमांस के कटघरे से निकालकर मंच और आधुनिक यथार्थ के साथ जोड़ा। यद्यपि उनका 'जय - पराजय' (1937) प्रसाद की प्रभाव छाया से बाहर नहीं है फिर भी 'छठा बेटा' (1940) उस प्रभाव से मुक्त है। उनके दो अन्य नाटक 'कैद' (1945) और 'उड़ान' (1946) - एक - दूसरे के पूरक हैं। 'अंजो दीदी' (1954) 'अश्क' की सर्वाधिक प्रौढ़ नाटकीय कृति है। इसके अलावा 'अलग - अलग रास्ते', 'भंवर', 'अंधी गली' और 'पैंतरे' उनके अन्य नाटक हैं। 'अश्क' के नाटकों में - पिता - पुत्र संबंध, आधुनिक नारी के विभिन्न रूप तथा मध्यवर्गीय परिवार की स्थूल समस्याओं का यथार्थपूर्ण चित्रण हुआ है।

विष्णु प्रभाकर कृत 'डॉक्टर' भी इस अवधि का बहुचर्चित नाटक है। यह एक मनोवैज्ञानिक सामाजिक नाटक है जिसमें भावना और नैतिक कर्तव्य का संघर्ष दिखाया गया है। 'समाधि', 'बंधनमुक्त', 'रक्त चंदन', 'साहस', 'माँ भाई बँटवारा', 'लिपस्टिक की मुस्कान' उनकी अन्य उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। मंचीय सार्थकता और जीवनानुभूतियों की नाटकीय रचनात्मकता जगदीशचन्द्र माथुर के 'कोणार्क

में लक्षित होती है। उनके अन्य नाटक 'शारदीया', 'पहला राजा' (1969) तथा 'दशरथ नन्दन' ऐतिहासिक - पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित होने पर भी युगीन संदर्भ से जुड़े हुए हैं।

आधुनिक भावबोध को रूपायित करनेवाले नाटकों में धर्मवीर भारती का गीति - नाट्य 'अंधा युग' (1955) विशेषतः उल्लेखनीय है। महाभारत युद्ध के अंतिम दिन से लेकर कृष्ण के देहावसान तक की कथा पर आधारित इस नाटक में - युद्धोपरान्त अवसादपूर्ण त्रासदी तथा पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व की ज्वाला यथार्थ का नवीन पक्ष उद्घाटित करती है। इसके अतिरिक्त सुमित्रानंदन पंत के 'रजत शिखर', 'शिल्पी' और 'सौवर्ण', सेठ गोविन्द दास कृत 'स्नेह या स्वर्ग' (1946), सिद्धनाथ कुमार कृत 'सृष्टि की साँझ' और दुष्यन्त कुमार कृत 'एक कण्ठ विषपायी' (1963) उल्लेखनीय गीति - नाट्य हैं।

मोहन राकेश कृत 'आषाढ़ का एक दिन' (1958), 'लहरों के राजहंस' (1963) और 'आधे अधूरे' (1969) गहन मानवीय ट्रेजेडी को रचनात्मक ढंग से आंकने वाले नाटक हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' महाकवि कालिदास के परिवेश, रचना - प्रक्रिया, प्रेरणा - स्रोत और आंतरिक संघर्ष पर आधारित है। कालिदास को रचना की प्रेरणा अपने गाँव के परिवेश तथा मल्लिका से मिली।

PAGE NO.:
DATE: / /200

राजाश्रय प्राप्त होने पर कालिदास की प्रतिभा सूखने लगी। कालिदास और मल्लिका की भावनामयता के विरुद्ध विलोम और मल्लिका की माँ रोमांस - विरोधी पात्र हैं जिन्होंने उनके अन्तर्द्वन्द्वों को धार दी है। फलस्वरूप नाटक में गहन प्रवेगमयता और तीव्रता आ गई है जिसे एक रोमानी दुःखात्मकता (एगोनी) तक पहुँचाकर समाप्त कर दिया गया है।

'लहरों के राजहंस' राकेश का दूसरा नाटक है। इसमें राग - विराग और श्रेय - प्रेय के द्वन्द्व को उभार कर चिरन्तन आध्यात्मिक प्रश्न को नये संदर्भ में उठाया गया है। इसका कथानक अश्वघोष के 'सौन्दरनन्द' पर आधारित है। गौतम बुद्ध का सौतेला भाई राजकुमार नन्द अपनी अनिन्द्य सुन्दरी पत्नी के प्रति अत्यधिक आसक्त है, पर बुद्ध के प्रति यानी आध्यात्मिकता के प्रति भी उसका मन आकर्षित है। नाटकीय संघर्ष की स्थितियाँ इन दो विरोधी जीवन - दर्शनों की टकराहट से उत्पन्न होती है। उसकी पत्नी सुन्दरी नारी सौन्दर्य को आकर्षण का चरम बिन्दु मानती है किन्तु जब एक दिन नन्द ने भी बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली तब उस सौन्दर्यगर्विता का अहं पूर्णतः खण्डित हो गया। जहाँ 'आषाढ़ का एक दिन' अपनी भावुकतापूर्ण तीव्रता में समाप्त होता है,

DATE: / /200

वहाँ 'लहरों के राजहंस' में नन्द आधुनिक भावबोध का प्रतिनिधित्व करता है। संशयशील, अकेली और अनिर्णीत स्थिति में पड़ा हुआ भी वह एक किरण की तलाश में है।

'आधे - अधूरे' राकेश का तीसरा नाटक है जो उनकी विकास - यात्रा की अगली मंजिल का सूचक है। इसमें इतिहास के आधार को छोड़कर समाज की विसंगतियों से सीधे जूझने का प्रयास है। वैवाहिक जीवन की मध्यवर्गीय विडम्बनाओं के कारण परिवार का प्रत्येक व्यक्ति आधा - अधूरा रहकर अपने - अपने ढंग का संत्रास भोगता है। नाटककार ने संत्रास के मूल कारणों की खोज की है। यह विडम्बना आर्थिक - मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार की है। पात्रों की वृत्तात्मकता के फलस्वरूप नाटक आद्यन्त तनावपूर्ण बना रहता है। यह तनाव राकेश के पिछले नाटकों के तनावों से भिन्न है। इसमें रोमान्स की धुवन भी नहीं है। भाषा, लय और नाटकीय संयम तनाव को गहराते जाते हैं। अंत में अपने समापन के साथ, छाया - प्रकाश के माध्यम से सारा वातावरण संवेदना से आप्लावित हो उठता है।

मोहन राकेश के बाद का हिन्दी नाटक निराशा और पराजयबोध के संसार से निकलकर संघर्ष में टूटते, हुए पर हिम्मत बाँधते आदमी की

Teacher's Signature

आस्था की ओर भी कदम बढ़ाता है। यह नाट्यसृजन आज की जिन्दगी को पहचानने - समझने की दिशा अपनाता है। विदेशी अन्धानुकरण की निस्सारता को पहचान कर अपनी जमीन में जड़ें जमाता है और लोक - संवेदना और लोक - भाषा में अपनी लोक - नाट्यधर्मी परंपरा को फिर से दुहराता है।

सन् साठ के बाद ~~अपने~~ उपजे मोहभंग और संबंधों की अर्थ हीनता ने जीवन के पुराने गणित को गलत ठहराया है। नयी टेकनीक, नयी रंग - सृष्टि और प्रयोगधर्मी साहसिकता ने नाट्य सृजन की नई संभावनाओं को जीवन्तता से उजागर किया है। सातवें - आठवें दशक में देश के राजनैतिक संघर्षों का प्रभाव भी नाटकों की सृजन - प्रेरणा पर पड़ा। चीन और पाकिस्तान के आक्रमणों ने भारतीय जनमानस में देश - प्रेम की भावना को पूरी शक्ति से निष्पादित किया। भीष्म साहनी का 'हानुश', डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का 'रक्त कमल', शरद जोशी का 'अन्धों का हाथी', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'बकरी', जानदेव अग्निहोत्री का 'वतन की आबरु', रेवतीशरण शर्मा का - 'अपनी धरती' आदि इस काल की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

आज के हिन्दी नाटक

DATE: / /200

में देशभर के नाटकों की सृजनात्मक - चेतना का स्पर्श समा रहा है। हिन्दी नाटक का एक अखिल भारतीय नाट्य - चक्र तैयार हुआ है तथा अन्य भारतीय भाषाओं से लेन - देन बनाकर हिन्दी नाटक संपूर्ण भारतीय अस्मिता को उजागर कर रहा है। नये नाटककार आज ऐसे नाटक लिख रहे हैं, जिनमें आज का समग्र जीवन धड़कता हुआ महसूस किया जा सकता है। अतः हिन्दी नाटक और रंगमंच से नवीन संभावनाओं के प्रति आश्वस्त हुआ जा सकता है।